[Conference- Innovation in Music & Dance :January,2015] ISSN- 2350-0530(O) 2394-3629(P)
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v3.i1SE.2015.3511

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

ताल वाद्यों में अधुनातन प्रयोग एवं प्रवृत्तियां

डॉ. ज्ञानसागर सिंह,
सहायक प्राध्यापक
(संगीत एवं नृत्य विभाग)
कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र (हरियाणा)

ताल राग का मूल है, वाद्य ताल का अंग।
द्वाय संयोग जब होत है, उठत अनेक तरंग।।1

संगीत में तीनों अंगों–गायन वादन और नृत्य इन तीनों विधाओं में ताल का समान महत्व है। ताल संगीत में अनुशासन का निर्वहन करता है। यह नियमबद्ध और अनुशासनात्मक ताल व्यवस्था ही सांगीतिक आनंद का सृजन करती है। इसके अभाव में अर्थात ताल रहित संगीत में सौंदर्य तथा सार्थकता नहीं रह जाती है । अनिबद्ध संगीत के श्रवण से हृदय में उदासीनता सी छा जाती है। ताल जीवंतता और उमंग का प्रतीक है। ताल के बिना संगीत का कोई महत्व नहीं क्योंकि इससे आनंद की अनुभूति नहीं हो सकती और संगीत का मुख्य लक्षण ही आनंदानुभूति कराना है जिसकी पूर्ति के लिए ताल का सहारा लेना अनिवार्य है।

संगीत में ताल की अत्यधिक उपयोगिता और महत्ता के कारण ही संगीत के क्षेत्र में विविध ताल वाद्यों का प्रयोग किया जाता है क्योंकि ताल का प्रत्यक्ष एवं क्रियात्मक प्रयोग ताल वाद्यों के द्वारा ही सम्पादित किया जाता है और इसी में सौंदर्य भी निहित है। संगीत में ताल को वाद्य का आश्रय प्राप्त हो जाने पर मन को आंनदित एवं उल्लासित करने वाली जो तरंगे उठती है वह संगीत के सौंदर्य एवं प्रभाव को द्विगुणित कर उसको जीवंतता प्रदान करती है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है और इसका प्रभाव सर्वव्यापी हैं। समाज में हो रहे परिवर्तन संस्कृति और कलाओं को भी प्रभावित करते हैं। साथ ही साथ जन साधारण की रूचि कलाकारों का नजरिया भी सार परिवर्तित व परिवर्तित होता रहता है। जिसके फलस्वरूप अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग और उनकी उपयोगिता बनाए रखने के लिए विद्वानों ने अपने विवेकानुसार उनको परिमार्जित कर बदलते परिवेश के अनुकूल ढालने का अनवरत प्रयास किया है और कर रहे है।

आज वर्तमान समय में हम जितने ताल वाद्य देखते हैं उन सभी वाद्यों के विकास में कई सदियों का समय लगा है। फिर चाहे वह अवनद्ध वाद्य हों या घन वाद्य। उनकी जड़ें कहीं न कहीं हमारे प्राचीन वाद्यों से जुड़ी हैं। ताल वाद्यों में जो अवनद्ध वाद्य हैं उनके विकास के मूल में भरतकालीन त्रिपुष्कर है। भरत कालीन त्रिपुष्कर में तीन अंग होते थे जो क्रमशः आंकिक और ऊर्ध्वक एवं आलिंग्य कहलाते थे। आंकिक जहाँ द्विमुखी होता था वहीं ऊर्ध्वक व आलिंग्य एक मुखी वाद्य होते थे। ऊर्ध्वक और आलिंग्य का विकसित रूप ही आज तबला वाद्य के नाम से जाना जाता है । तबले का आधार पहले मिट्टी का बना होता था जिससे उसके क्षतिग्रस्त होने का भय हमेशा बना रहता था । आज इसका बाँया भाग धातु निर्मित होता है । धातु और लकड़ी से निर्मित वाद्यों को लाना ले जाना और उनका रखरखाव अधिक सरल हो गया। आजकल कई जगह प्लास्टिक या फाइबर से निर्मित अवनद्ध वाद्यों को देखा जा सकता है । कुछ वाद्य जैसे– ढोल, ताशा जैसे अवनद्ध वाद्यों में वर्तमान समय में चमड़े के स्थान पर प्लास्टिक से दोनों मुखों को मढ़ा जाने लगा है। इनके प्रयोग से वाद्य का जीवनकाल तो बढ़ ही जाता हैं, साथ ही प्लास्टिक या फाइबर से निर्मित वाद्यों के माध्यम से ताल का निर्वहन भी आसानी से हो जाता है। जो नाद माधुर्य चमड़े से उत्पन्न होता था वैसी नादात्मक ध्वनि का का निष्पादन इनके प्रयोग से संभव नहीं हो पाता।

आरम्भिक अवस्था में अधिकांश ताल वाद्यों में किसी भी प्रकार का लेपन नहीं किया जाता था जिसके कारण इन वाद्यों के स्वयं में पूर्ण विकसित होने पर भी गूंजयुक्त ध्वनि का निष्पादन संभव नहीं हो पाता था। इन कमियों को दूर करने के लिए ताल वाद्यों के मुख चर्म पर चिकनी मिट्टी (काली) का लेप लगाया जाने लगा। कालान्तर में मानव सभ्यता के विकास तथा उसके नवीन अविष्कारों और खोज की प्रवृत्ति के फलस्वरूप मिट्टी के स्थान पर 'गेहूँ' और 'जौ' आदि के आटे का प्रयोग किया जाने लगा। परन्तु लगभग चौदहवीं शताब्दी के आसपास इस प्रकार के विलेपन हेतु लौह चूर्ण और कोयला आदि के मिश्रण से बने मसाले का प्रयोग किया जाने लगा। जिसका परिशोधित स्वरूप हम आज 'स्याही' के रूप में देखते हैं। इस स्याही के प्रयोग से ताल वाद्यों विशेष रूप से अवनद्ध वाद्यों के गुणों में अभिवृद्धि हुई। वाद्यों को इच्छित स्वर में मिलाना

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

आसान हो गया तथा उनसे निकलने वाली ध्वनि की गुणवत्ता में भी आशातीत परिणाम प्राप्त हुए। सर्वप्रथम लौह चूर्ण के द्वारा बने इस मसाले का प्रयोग मृदंग के दाहिने मुख पर लगाया गया। बाद में अन्य अवनद्ध वाद्यों, खोल, नाल, तबला आदि में भी इस प्रकार के काले मसाले का प्रयोग किया गया। आज जिसे हम तबला जोड़ी में डग्गा या बांया कहते हैं उस पर भी स्याही का प्रयोग न करके आज के पखावज की भांति आटा ही लगाया जाता था, परन्तु उस्ताद सिद्धार खां ने वादन की सुविधा और गूंज की वृद्धि तथा नादात्मकता लाने के लिए डग्गे पर भी स्याही का प्रयोग किया और अपेक्षित ध्वनि (नाद) को प्राप्त करने में सफल हुए। यह प्रयोग तबले के विकास और उसके उत्थान में एक महत्वपूर्ण कारक सिद्ध हुआ। बांये तबले पर स्याही के लगने से उससे निकलने वाली ध्वनि अधिक गूंज युक्त तो सिद्ध हुई ही साथ ही साथ उस ध्वनि को नियन्त्रित करने के लिए हाथ के घिसाव या जिसे हम घिस्सा लगाना कहते है, संभव हो सका। फलस्वरूप ढोलक पर बजने वाले प्रभावकारी वर्णों और तालों को तबले पर आसानी से बजाया जा सकने लगा, जबकि पखावज में बांये मुख की तरफ आज भी पारम्परिक रूप से आटे का ही प्रयोग किया जाता है जिस पर घिसाव (घिस्से) के द्वारा गमक युक्त वर्णों का वादन संभव नहीं हो पाता।

आरंभिक ताल वाद्यों में स्वर में मिलाने के लिए विलेपन क्रिया का प्रयोग तो किया जाता था जो कठिन कार्य था। कुछ वाद्यों में कसाव (तनाव) लाने के लिए चमड़ें की बद्धियों और उनके बीच में लकड़ी के गट्टे आदि लगाकर अभिसिप्त स्वरों में मिलाने का विधान किया गया। आधुनिक काल में कई वाद्यों में लोहे के नट बोल्ट के प्रयोग से यह कार्य संपादित किया जाता है। शादी ब्याह में बजने वाले ढोल आदि तथा नाल में इस प्रकार के प्रयोग आज हम देख सकते हैं। चमड़े की बद्धियों की जगह नाइलॉन आदि की रस्सियों का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है।

ताल वाद्यों के निर्माण सामग्री तथा उनके आकार एवं स्वरूप में जैसे–जैसे परिवर्तन हुए, उनके प्रयोग और वादन शैलीयों और वर्णों के निकास में भी बदलाव हुए। पहले के शास्त्रीय संगीत में ताल का कालमान करने के लिए घन वाद्यों का ही प्रयोग किया जाता रहा और इसी कारण से घन वाद्यों का महत्व अधिक रहा। जैसे–जैसे गायन शैलियां और तंत्री वाद्यों का विकास होता गया इनके साथ वाद्यों की संगति करने के लिए घन वाद्यों की संगति अनुकूल नहीं रह गई फलस्वरूप गायन वादन का अनुरंजन के साथ–साथ ताल धारण का कार्य करने में भी अवनद्ध वाद्यों यथा– तबला, पखावज, ढोलक आदि का प्रयोग प्रारम्भ हुआ । जैसे–जैसे ताल वाद्यों का प्रयोग विकसित व सफल होता गया वैसे–वैसे घन वाद्यों का महत्व कम होने लगा। आधुनिक युग में संगीत की विभिन्न शैलियों में विशेष रूप से शास्त्रीय संगीत में ताल वाद्यों के रूप में घन वाद्यों का प्रयोग न के बराबर किया जाता है। इनका प्रयोग प्रायः लोक संगीत में सिमट कर रहा गया है।

ताल वाद्यों पर आरंभिक चरण में अवनद्ध वाद्यों पर ताल का कोई ठेका नहीं बजाया जाता था जबकि गाने आदि की संगत का विधान था। अवनद्ध वाद्यों पर ठेका बजाने की प्रथा मध्य युग से प्रारम्भ हुई। यही कारण है कि इससे पूर्व के सभी संगीत ग्रन्थों में ताल के बोल न देकर उनकी पहचान हेतु केवल मात्राओं और चिह्नों का ही उल्लेख मिलता है।

सर्वप्रथम ठेका बजाने की परंपरा मृदंग वादन से प्रारंभ हुई जिसे तबले में विकसित किया गया । वास्तव में आधुनिक भारतीय शास्त्रीय संगीत में ठेका ताल वाद्यों की नींव है । ठेके से ताल की मात्राओं तथा विभागों का बोध होता है। ठेके के बोलों से ताल की प्रत्येक मात्रा स्पष्ट होती चली जाती हैं और गायक को स्वयं ताल देने की आवश्यकता नहीं रह जाती। ताल वाद्यों के ठेकों का निर्धारण भी गायन शैलियों के अनुसार ही किया गया। पहले जहाँ ध्रुपद धमार जैसी जोरदार गायन शैलियों में संगत करने के लिए केवल खुले बोलों से युक्त तालों व उनके ठेका का विधान था परन्तु जैसे–जैसे ख्याल, ठुमरी, गजल जैसी नयी–नयी गायन शैलियां विकसित हुई उनकी प्रवृत्ति के अनुरूप बंद बोलों से युक्त तालों व ठेकों का निर्माण व प्रयोग प्रारम्भ हुआ । इन्हीं बदलावों और प्रयोगों में कुछ वाद्यों की भूमिका में भी बदलाव हुआ। हुडुक्का जैसा वाद्य जो शारंगदेव के काल में एक प्रतिष्ठित शास्त्रीय वाद्य था परन्तु आज इसका प्रयोग एक लोक वाद्य के रूप में उत्तरप्रदेश की कहार जाति द्वारा ही किया जाता है। वहीं मध्यकाल में पखावज का जो स्थान था वह आज नहीं है। उसके स्थान पर आज ताल वाद्य के रूप में तबला सर्वोपरि हो गया है। मध्यकालीन राज दरबारों में प्रयुक्त किया जाने वाला ढोलक भी अधुनातन समय में लोक संगीत व कुछ थोड़ा सुगम संगीत में ही प्रयोग किया जाता है।

ताल वाद्यों का संगीत में अपना एक विशिष्ट स्थान है । यद्यपि ताल वाद्यों का मुख्य ध्येय संगति करना रहा है इसीलिए मुख्य रूप से इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए ताल वाद्यों का निर्माण किया गया था। परन्तु आधुनिक काल तक के लम्बे सफर में ताल वाद्यों पर अनेक प्रयोग और सुधार किए गए और इसी के फलस्वरूप अनेक ताल वाद्य संगति के साथ–साथ अपना स्वयं अस्तित्व भी स्थापित करने में सफल रहे । आज के युग में तबला जैसे ताल वाद्य ने तो अपना स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं अपितु

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

अपनी विविध शैलियां भी समृद्ध की है और अपने साहित्य में भी वृद्धि की है । आज तबले पर स्वतंत्र वादन के माध्यम से अनेक लय और छन्दों पर सार्थक रचनाओं की प्रस्तुति सम्भव हो सकती है। आज के तबला वादक उन रचनाओं और बंदिशों को प्रकृति तथा समसामयिक घटनाओं से जोड़कर श्रोताओं को बांधने में सफल हो रहे हैं।

ताल वाद्यों के माध्यम से 'ताल कचहरी' जैसे कार्यक्रमों की सफल प्रस्तुतियां देते हैं, जिसमें अनेक ताल वाद्यों को कई कलाकार मिलकर किसी रचना विशिष्ट को अपने वाद्यों के अनुरूप प्रस्तुत करते हैं। संगीत की परिपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए आज ताल वाद्यों की अत्यधिक आवश्यकता होती है, उदाहरणार्थ – यदि नृत्य को ही लिया जाय तो नर्तक को अपनी कला के प्रदर्शनार्थ वाद्यों का सहयोग लेना नितांत आवश्यक होता है। इसकी पूर्ति के लिए वृद वादन के रूप में लिया जा सकता है। भावाभिव्यक्ति में ताल वाद्यों का आज अत्यधिक प्रयोग दिखाई देता है। विभिन्न रसों का प्रतिपादन इनके माध्यम से बखूबी किया जाता है। वीर रस का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए पखावज, नगाड़ा, ढोल जैसे ताल वाद्यों का प्रयोग किया जाता है जिनकी जोरदार और गूंज युक्त ध्वनि जोश और उमंग भरने में सहायक होती है। वहीं भक्ति रस को उत्पन्न करना हो तो ताल, मंजीरा, चिमटा जैसे ताल वाद्य सहायक सिद्ध होते हैं। श्रृंगार रस की अनुभूति के लिए ढोलक, तबला, ढोलकी, नाल जैसे वाद्यों की ध्वनि असरकारक सिद्ध होती है। आज फिल्मों में विभिन्न प्रकार के वातावरण की सृष्टि हेतु कई वाद्यों का एक साथ प्रयोग किया जाता है जिनमें ताल वाद्य भी सम्मिलित होते हैं। मृदंग, तबलादि ताल वाद्यों पर कुशल वादक बादलों की गड़गड़ाहट, बिजली की कड़क, घोड़ों की टापों की ध्वनि आदि को स्पष्टता से निकाल लेते हैं। जिसका उदाहरण हम शोले फिल्म में देख सकते हैं जिसमें बनारस घराने के प्रसिद्ध तबला वादक पं. सामता प्रसाद द्वारा घोड़े की टाप के साथ ऐसा सफल वादन किया कि ऐसा प्रतीत होता है कि सच में घोड़े के टाप की ही आवाज है।

आजकल ताल वाद्यों का स्वरूप 'तरंग वाद्य' के रूप में भी देखने को मिलता है जिसमें अलग–अलग स्वरों के विभिन्न तबलों को मिलाकर रचनाओं की प्रस्तुति दी जाती है। वर्तमान समय में ताल वाद्यों का प्रयोग अत्यन्त व्यापक है न केवल भारतीय संगीत अपितु पाश्चात्य संगीत के ताल वाद्यों पर भी अनेक सफल प्रयोग किए जा रहे हैं और इनकी महत्ता में भी वृद्धि हो रही है। इन वाद्यों के आकार, निर्माण सामग्री से लेकर वादन विधि और शैलियों को लेकर ताल वादकों का चिंतन सतत् जारी है और यह उम्मीद की जाती है कि आने वाले वर्षों में इन ताल वाद्यों की प्रतिष्ठा और उनके वादकों के सम्मान में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी।

संदर्भ –

1 मृदंग तबला सुबोध भाग–2, गोविन्द देवराव, पृ. 5